REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 6 | MARCH - 2018

ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य में दलित चेतना

श्रीमान् राजकुमार
सहायक प्रोफेसर , वैश्य कॉलेज, भिवानी.

प्रस्तावना :

ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को ग्राम बरला, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। हिन्दी में दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मीकि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्होंने अपने लेखन में जातीय–अपमान और उत्पीड़न का जीवन्त वर्णन किया है और भारतीय समाज के कई अनछुए पहलुओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। इनका मानना है कि दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। इन्होंने सृजनात्मक साहित्य के साथ–साथ आलोचनात्मक लेखन भी किया है।

वाल्मीकि जी के काव्य संग्रहों में –

- ''सदियों का संताप''
- ''बस्स ! बहुत हो चुका''
- ''अब और नहीं'' आदि प्रमुख हैं

दलित शब्द का अर्थ है –

''जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ और वंचित आदि।''[1]

दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण व्यवस्था ने जिसे अछूत की श्रेणी में रखा उसका दलन हुआ। शोषण हुआ, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है जो जन्मना अछूत है।

दलित चेतना

दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि ''मैं कौन हूँ?'' मेरी पहचान क्या है? इसी सवाल से लेखक की रचनाशीलता को ऊर्जा मिलती है।

''दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु–विगलित वर्णन जो मौलिक चेतना से विहीन हो, चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है। वह है दलित चेतना। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो। उसकी चेतना यानी दलित चेतना।''[2]

इसी संदर्भ में सुप्रसिद्ध लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम आता है जिन्होंने कहानियों, उपन्यासों, कविताओं आत्मकथाओं एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों के माध्यम से दलित जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित शब्द दबाये गये, शोषित प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य से जुड़ता हो, सामाजिक विसंगतियों या धार्मिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमताओं का हो या साहित्यिक परम्पराओं, मानदण्डों या सौन्दर्यशास्त्र का हो दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जाति–भेद का विरोध है। परम्पराओं से दबी हुई चिनगारियाँ अब प्रस्फुटित होने लगी है। अब उनमें अधिकार बोध का ज्ञान नजर आने लगा है। दलित लेखक किसी समूह, किसी जाति विशेष सम्प्रदाय के खिलाफ नहीं है। लेकिन व्यवस्था के विरुद्ध है– चाहे वह सरकारी, सामाजिक, धार्मिक संस्था की व्यवस्था हो, जो अपनी सोच और दृष्टिकोण से दलितों का शोषण और दमन करती है।

वाल्मीकि जी की यही सोच उनके काव्य में देखने को मिलती है। वे अपनी कविताओं में दलित संवेदना को समग्रता में पकड़ते हैं और उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति में समृद्धि लाते हैं यानि दलित चेतना को अपनी रचना में शिखर पर बिठा देने के लिए प्रयास करते हैं।

'बस्स ! बहुत हो चुका' शीर्षक कविता संकलन उनकी सृजनात्मक वरीयता का सत्यापन है। ये आँखें खोलकर सोने वालों को भी जगाती है, बार–बार जगाती है। वास्तव में ये कविताएँ उनके लिए तैयार की गयी दवाएँ हैं जो दलित विरोधी मरीज है।

जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गन्दगी से भी बाल्टी–कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रंगों में दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ
जो फैले हैं इस पर धरती पर
ठंडे रेतकणों की तरह''[3]

इस काव्य संकलन की अधिकांश कविताएँ हमारी संस्कृति, इतिहास और सामाजिक सरंचना का दलित विमर्शी विश्लेषण करती है और इनकी विडम्बनाओं का स्कैनिंग करती है। लगता है इनमें कवि छुआछूत रूपी कैंसर की शल्य चिकित्सा करते हैं और समाज को स्वस्थ करते हैं।

इस संकलन का 'बस्स ! बहुत हो चुका' शीर्षक ही दलित विमर्श की ध्वनि पैदा करता है। यह एक संदेश बनकर आया है कि आगे दलित किसी भी कीमत पर अपमान सहने के लिए तैयार नहीं है। यह एक चेतावनी भी है कि अब बंद करो दलित पर अत्याचार बहुत हो चुका है। शायद पीड़ा देने वाले अब तक यह मालूम नहीं कर सके हैं कि पीड़ा हद से बाहर दे चुके हैं। अतः यह एक कल्पांत घोषणा है जिनके पास कान है वे सुने।

इस संकलन की प्रत्येक कविता दलितों के दर्द के अतल को स्पर्श कर रही है। कविताओं की सृजनात्मक ऊर्जा की समृद्धि इसके लिए सहायक सिद्ध हुई है। अस्पृश्यता के अपयश की अभिव्यक्ति में ये कविताएँ मार्मिक निकली है। 'पेड़' शीर्षक कविता को लीजिए यह भारत की सामाजिक सरंचना की विडम्बना की आलोचना करती है। अपूर्णता यानि टूटी हुई अस्मिता इस सरंचना की त्रासदी है जो दुनिया के अन्य देशों में देखने को नहीं मिलती है। कवि कहते हैं–

''पेड
तुम उसी वक्त तक पेड़ हो
जब तक ये पत्ते
तुम्हारे साथ हैं
पत्ते जरते ही
पेड़ नहीं ठूँठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे।''[4]

पेड़ बनने के लिए ठूँठ और पत्तों को जुड़ना चाहिए। इनमें एक चीज अप्रत्यक्ष रखी जाए तो पेड़ का अहसास नहीं मिलता है। जाति सामाजिक सरंचना में ठूँठ की याद दिलाती है। ठूँठ स्वयं पेड़ की अपूर्णता की अभिव्यक्ति है। इस कविता का सृजनात्मक सौंदर्य भारतीय समाज की अपूर्णता अस्मिता प्रकट करता है। अपूर्णता एक विकृति है। इस विकृति को 'पेड़' कविता ने सृजनात्मकता में कैद किया है।

'पेड़' शीर्षक कविता पाठकों के मन में दलित चितंन के प्रति नई चेतना को जन्म देती है।

वाल्मीकि के शब्दों में –

दलित कविता स्वतंत्रता और सामाजिक बदलाव की पक्षधर है। जहाँ ''आह ग्राम्य–जीवन ही क्या? की काल्पनिक अनूभूति नहीं विषमता मूलक ग्राम्य जीवन और भारतीय समाज व्यवस्था की गहन पीड़ा है। दलित कविता विरोध और नकार के साथ आदमी को आदमी की तरह पहचानती है, जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे, वहीं तो कविता है सच्ची और सही कविता है। जो सच को सच और झूठ को झूठ कहने का हौसला रखती है।... वहीं तो कविता है।

दलित कविता का एक बड़ा आहान यह है कि आदमी को पशुओं से बद्तर देखने का सवर्ण नीति को बंद करो, दलित अपने देश में पराये न बने देश उनके लिए अजनबी न हो ताकि वे जिंदा रहकर भी लाश के समान न रहें।

'घृणा' तुम्हें मार सकती है' शीर्षक कविता 'दलित' संज्ञा के द्वारा पैदा किए गए दर्द को गहराई में पकड़ती है –

''चाहे संकीर्ण कहो या पूर्वग्रही
मैं जिस तिस को बरसों बरस
सहता रहता हूँ
अपनी त्वचा पर
सुई की चुभन जैसे
उसका स्वाद एक बार चखकर देखो
हिल जाएगा पाँव चले जमीन का टुकड़ा।''[5]

जाति संज्ञा सुई की चुभन की तरह है। इस संज्ञा ने दलित के प्रति घृणा पैदा की है और उन्हें स्थान हाशिये में दिया है। हाशिए में रहकर जीवन बिताने की क्रूर नियति दलित को सौंप दी गयी है। यही इस कविता का केन्द्रीय भाव है। इस भाव को रचनात्मकता में समेटकर कवि ने दलित समस्या को अपूर्व स्वर प्रदान किया है।

जातिवाद की निर्ममता ने दलित के दर्द को बेहद कर दिया है। जाति की उच्चता और कुछ नहीं बल्कि सवर्णों का अवर्णों के प्रति बेइमानी है, जिसका खुलासा कविता में किया गया है। लम्बे अरसे से दलितों द्वारा भोगी जा रही वेदना इसमें दस्तावेज बनी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का संग्रह 'सदियों का संताप' पूर्ण रूप से दलित चेतना की कविताओं का संग्रह है और यह पहला संग्रह है, जिसने मुख्यधारा के साहित्य में सबसे ज्यादा हलचल मचायी। ये कविताएँ भावुकता से मुक्त है। उसमें गंभीर दलित चिन्तन और विमर्श है। संकलन की पहली ही कविता 'ठाकुर का कुँआ' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यह सवाल उठाकर सवर्ण चेतना को झकझोर दिया।

''चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का
कुँआ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत–खलिहान ठाकुर के
गली–मुहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या?
गाँव? शहर? देश'' ..... [6]

यह सवाल वाल्मीकि ने 1989 में उठाया था, आजादी के चार दशक बाद। डॉ0 अंबेडकर ने 1930 में भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर सवाल खड़े किये थे कि दलितों को आजादी दिये बगैर भारत की आजादी सवर्णों की आजादी होगी और दलितों के लिए वह एक हिन्द राज की होगा जिसमें सब कुछ हिन्दुओं को हासिल होगा और दलितों को उनकी गुलामी में ही रहना होगा। वाल्मीकि की यह कविता इसलिए भी महत्वपूर्ण थी कि वह डॉ0 अंबेडकर की शंका को सही साबित कर रही थी। यही नहीं, उन्होंने दलितों से झूठी सहानुभूति रखने वाले सवर्ण रचनाकारों से भी दो–दो हाथ किये।

वाल्मीकि ने पहली बार सवर्णों की आँखों में उँगली डालकर उनसे सवाल किया कि यदि दलितों की जिन्दगी को उन्हें जीना पड़ता, तो वे क्या करते? 'तब तुम क्या करोगे' कविता इस संकलन की ही नहीं इस पूरी सदी की पहली हिन्दी कविता थी, जिसमें कवि सवर्णों को निरुत्तर कर देता है। यह कवि की सबसे लम्बी और विचारोत्तेजक कविता है, जो वर्ण व्यवस्था के पैरोकरों को लगभग नंगा करते हुए पूछती है –

''यदि तुम्हें
मरे जानवरों को खींचकर
ले जाने के लिए कहा जाए
और
कहा जाए ढोने को
पूरे परिवार का मैला
पहनने को दी जाए उतरन
तब तुम क्या करोगे'' [7]

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पीढ़ी के दलितों के दर्द और संघर्ष के कवि हैं वे अपनी पीढ़ी के लोगों में आँसूओं का सैलाब नहीं, बल्कि विद्रोह की चिनगारी देखते हैं। उनकी पीढ़ी के दलितों ने अपने स्वाभिमान और सम्मान के लिए उन गाँवों से शहरों में पलायन किया जो उनके लिए हिन्दुओं के 'होटो' (यातना शिविर) थे। शहरों में आकर उन्होंने जुलूसों को देखा और अपने लिए भी संघर्ष का रास्ता चुना 'तुनी मुट्ठियाँ, कविता में कवि ने इन्हीं दलितों का प्रतिनिधित्व करता है –

''मेरी पीढ़ी सदियों के अभिशाप को
कंधों पर लादे
गाँव से शहर तक आयी है
खड़ी देख रही है दोराहे पर
मशाल लिये जाते जुलूस का''. [8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में दलित चेतना का जो स्वर मुखर किया है, वह इसी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व्यवस्था की देन है। भारतीय समाज में प्रारम्भ से चले आ रहे जाति–पाँति, छुआछूत के कारण सदियों से मूक होकर दलित समाज अत्याचार सहता आ रहा है। उनकी इसी मूक–वेदना, पीड़ा, आक्रोश, मानवीयता एवं आशावादिता की अभिव्यक्ति वाल्मीकि जी की कविताओं में प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि जी की कविताओं में जाति–व्यवस्था का यह विद्रोह, आक्रोश और बेचैनी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने जाति व्यवस्था द्वारा दिए गए दंशों का प्रतिरोध लिया है। यही दमित आक्रोश विद्रोह एवं चेतना के रूप में फुट पड़ा है। उनकी कविता में दलित चेतना का आक्रामक स्वर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने दलित अस्मिता की पहचान का स्वर कविताओं में उठाया है।

संदर्भ सूची :–

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, ''दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण : 2001, पृष्ठ संख्या–13.
2. वही, पृष्ठ संख्या–29.
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'प्रतिनिधि कविताएँ', पृष्ठ संख्या–67.
4. प्रमोद कोवप्रत, 'हिन्दी दलित साहित्य एक मूल्यांकन' प्रकाशन–वाणी प्रकाशन 4695, 21–ए, दयिागंज, नयी दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या–92.
5. वही, पृष्ठ संख्या–93.
6. कँवल भारती, 'दलित कविता का संघर्ष' स्वराज प्रकाशन, 4648/1,21, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ संख्या–172, 173.
7. वही, पृष्ठ संख्या –176.
8. वही, पृष्ठ संख्या– 174, 175.